एक केन्द्रीय दीवारों से घिरा हुआ है जो तीन मालाओं के नाम से प्रसिद्ध है तथा जिसके प्रत्येक किनारे के मध्य भाग में दरवाजे है। दरवाजे शुंडाकार स्तम्भों जैसे वास्तविक ढाँचे है और दक्षिण भारत से उसकी कोई समानता नहीं है

~~उड़ीसा~~ उड़ीसा शैली का तीसरा एवं अंतिम युग (1100 ई० से 1250 ई०) ~~के~~ प्रतिबिम्बित है मझोले आकार के अनेक मंदिरों में - जो अति सुन्दर आकृति तथा साज-सँवार की दृष्टि से विलक्षण है। भुवनेश्वर में ऐसे कम से कम एक दर्जन मन्दिर है जिनमें अधिकांश में सिर्फ दो ही मुख्य भाग है 'देउल और जगमोहन'। इनका एक विलक्षण उदाहरण अनन्त वासुदेव का मन्दिर है जिनमें नट मंदिर तथा भोगमंदिर बाद में जोड़े गये है। मंदिर की कुल लम्बाई 125 फुट, चौड़ाई 40 फुट तथा अटारी की ऊँचाई 68 फुट है। राजारानी नामक एक अन्य मन्दिर के देऊल का निर्माण पूर्ण है पर जगमोहन का नहीं किन्तु जगमोहन की अधूरी स्थिति से युग के शिल्पकारों द्वारा अपनायी गई शिल्पिक विधियों के बारे में अच्छी तरह पता चल जाता है

नोट:- कोणार्क के सूर्य मंदिर का निर्माण राजा नरसिंह देव ने (1238 - 63 ई०) करवाया था।

विजयनगर → विजयनगर राजाओं के अधीन, साम्राज्य के महान उद्देश्य जो इस्लाम के ~~के~~ लगातार आक्रमणों के विरुद्ध हिन्दू-धर्म के अवशेषों की रक्षा तथा विकास की चेतना से जुड़ी थी, के अनुरूप भारतीय कला ने कुछ खास पूर्णता तथा समृद्ध अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्राप्त की। इस काल में मन्दिर, ढाँचे, संगठन अत्यन्त जटिल हो गये। यहाँ तक कि स्तम्भ युक्त हॉलों, मण्डपों तथा अन्य सहायक ढाँचों में वृद्धि द्वारा पुराने मन्दिरों का भी विस्तार हुआ। ऐसे परिवर्द्धनों में सबसे विशिष्ट है मंदिर के आँगन में बायीं ओर यदि हम पूरब से प्रवेश करें तो वह है कल्याणमंडप का निर्माण। यह अलग अलंकृत स्तम्भ युक्त मंडप है जिसके मध्य भाग में एक ऊँचा मंच है जो देवता तथा उनकी पत्नी के प्रतिवर्ष उनके विवाह-समारोह के अवसर पर स्वागत के लिये बना है। इन दिनों देवियों के लिये सर्वत्र अपना अलग मंदिर बनने लगा। इस प्रथा का आरम्भ चोल काल के

अंतिम दिनों में हुआ था। इसकी विशिष्टता भी तथाकथित सहस्त्र-स्तम्भ मंडप अर्थात् स्तम्भों की अनेक पंक्तियों से युक्त अति विशाल हॉल। वस्तुत: स्तम्भ की विविध एवं जटिल सजावट विजयनगर शैली की सबसे बड़ी विचित्रता थी। इस सजावट में बड़े-बड़े तथा गोल मूर्तियों का इस्तेमाल अधिकांशत था। इन मूर्तियों में सबसे सुगोचर तल है पिछले पैर के बल खड़े क्रुद्ध घोड़े या कोई उपद्रवी अलौकिक जानवर। ये सभी स्तम्भ और मूर्तियाँ एक ही ठोस पत्थर को तराश कर निर्मित होती थी।

विजयनगर शैली के भवन तुंगभद्रा से दक्षिण सम्पूर्ण देश में फैले हुए हैं किन्तु उनका सबसे सुन्दर एवं विशिष्ट समूह स्वयं विजयनगर के ध्वस्त शहर में पाया जाता है। विट्ठल और हजाराराम के मन्दिर यहाँ मुख्य हैं किन्तु इनके अतिरिक्त और भी कई मन्दिर उल्लेखनीय हैं इनमें निर्विवाद रूप से विट्ठल मन्दिर सबसे अधिक अलंकृत है। इसका निर्माण यदि पहले नहीं तो देवराय द्वितीय के शासनकाल में प्रारम्भ हुआ और अच्युतराय के शासनकाल में भी जारी रहा। मन्दिर 500 फुट लम्बे तथा 310 फुट चौड़े एक समकोण चतुर्भुजाकार चहारदीवारी से घिरा है। इसमें गोपुरम् से युक्त तीन प्रवेश द्वार है। मुख्य मन्दिर मध्य भाग में है। यह मन्दिर विट्ठल के रूप में विष्णु को समर्पित थे इसमें तीन स्पष्ट भाग है- सामने एक खुला स्तम्भ हॉल 'महामण्डप', मध्यभाग में इसी तरह का एक बन्द हॉल 'अर्धमण्डप' तथा पृष्ठ भाग में गर्भगृह। इसकी एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता है बहुत चौड़ी छुट्टी मुड़ी हुई ओरी जिसके ऊपर ईंट का बना एक कंगूरा है भीतर 56 स्तम्भ है जिनमें प्रत्येक 12 फुट लम्बा है। पूर्व की ओर महामण्डप से दरवाजे के अतिरिक्त अर्धमण्डप में दो बगलवाले प्रवेशद्वार भी है। शेष ढाँचों में कल्याणमण्डप मूर्तिकला की उत्कृष्टता में सबको पीछे छोड़ देता है। कल्याण मण्डप के पास और महामण्डप के प्रवेशद्वार के सामने देवता का रथ है। गमनशील पहिये सहित इसके आधार तथा मुख्य मंजिल इमारती पत्थर के एक ही ठोस खण्ड को काटकर बनाये गये हैं। इस काल के अन्य मन्दिरों, जैसे ताड़पत्री तथा तिरुवालुर में भी इस प्रकार के पत्थर के रथ पाये गये हैं।

हजारा राम मन्दिर अधिक सम्भव विरूपाक्ष II

गोपुरम् होते हैं। इस काल के प्रसिद्ध मंदिरों में मदुरा, श्रीरंगम् तथा जम्बुकेश्वर, तिरुवारूर, रामेश्वरम्, चिदम्बरम्, तिन्नेवेली, ~~तिरुवाण्णामलई~~ तिरुवाण्णामलई एवं श्रीविल्लीपुत्तूर के नाम उल्लेखनीय हैं। मदुरा का मंदिर इनमें सबसे विशिष्ट है- इसका अधिकांश भाग एक ही समय बनाया गया। यह दोहरा मंदिर है जिसमें एक सुन्दरेश्वर को और दूसरा उसकी पत्नी मीनाक्षी को समर्पित है। मीनाक्षी मंदिर के सामने ही स्वर्णकमल सरोवर है। श्रीरंगम का रंगनाथ मंदिर बहुत कुछ मदुरा के नायक राजाओं द्वारा किये गये परिवर्द्धनों के कारण ही दक्षिण भारत के मंदिरों में सबसे बड़ा बन गया। मदुरा के मंदिर के समान ही रामेश्वरम् के मंदिर की भी स्कीम योजना के आधार पर रूपरेखा बनी है। यह मंदिर अपने मध्य सम्बद्ध गलियारे की दृष्टि से असाधारण है।

इस काल में विजयनगर के शासकों के द्वारा काल प्रतिमाओं का भी निर्माण किया गया। राजा कृष्णदेव राय एवं उनकी पत्नि वेंकटेश्वर की मूर्तियाँ तिरुपति के मंदिर में है। चिदम्बरम् के मंदिर उत्तरी गोपुर के नीचे दरवाजे के ताखे में स्थित कृष्णदेवराय की आकृति से मिलती-जुलती एक छोटी प्रस्तर मूर्ति है। कृष्णदेव राय ने 1520 ई० में इस मंदिर का निर्माण करवाया था।

उड़ीसा के देवस्थान (स्क वर्गाकार भवन) देउल कहलाते है और इसके सामने का भवन जगमोहन कहलाता है। जगमोहन के सामने नटमन्दिर या मूल भवन और स्वयं नटमन्दिर के सामने 'भोग मन्दिर' है जो सभी स्क ही धुरी पर उपस्थित होते हैं। वस्तुत: बाहरी भाग की अत्यधिक अलंकृत सतह की विचित्र तुलना में मन्दिर के भीतरी भाग की सादगी उड़ीसा के मन्दिरों की स्क खास विशेषता है। वैताल देऊल अपने पीपानुमा छत वाले शिखर, 'जगमोहन' के कोने पर स्थित अपने छोटे-छोटे पूरक देवस्थानों तथा अपने सभी अंगों की सु-सन्तुलित व्यवस्था की दृष्टि से उल्लेखनीय है। भुवनेश्वर में परशुरामेश्वर का मन्दिर तथा 'वताल देउल' 750 ई० 900 ई० की अवधि के दो प्रारम्भिक उदाहरण है। ये दोनों इस शैली के उद्भव तथा सम्बन्धों पर प्रकाश डालते है। परशुरामेश्वर मन्दिर में स्क देउल तथा स्क जगमोहन है जिसकी सम्पूर्ण लम्बाई 48 फुट है तथा देउल के ऊपर के शिखर की ऊँचाई 54 फुट है।

भुवनेश्वर के सीमान्त पर स्थित मुक्तेश्वर का छोटा मन्दिर (975 ई०) तथा भुवनेश्वर स्थित लिंगराज मन्दिर (1000 ई०) एवं पुरी स्थित जगन्नाथ मन्दिर (1100 ई०) द्वितीय काल (900 ई० से 1100 ई०) के नमूने है। मुक्तेश्वर मन्दिर इस क्षेत्र के थोड़े से ऐसे मन्दिरों में है जिनमें भीतरी भाग में मूर्त्तियों की सजावट की गई है। लिंगराज का मन्दिर 520 फुट लम्बा तथा 465 फुट चौड़े विशाल चतुर्भुजाकार आँगन के मध्यभाग में स्थित है। लिंगराज मन्दिर में बड़े मन्दिर के सभी अंग विद्यमान है यद्यपि नट मन्दिर तथा भोगमन्दिर इसमें बाद में जोड़े गये थे। इस मन्दिर की सबसे अद्भुत विशेषता है, देउल के ऊपर का बड़ा शिखर जो अपनी ऊँचाई (125 फुट) तथा विशालता के कारण सम्पूर्ण क्षेत्र पर छाया है। मूर्त्तियों के माध्यम से इसकी बाहरी दीवारों की जो सजावट की गई है, वह दर्शकों को अपने में तल्लीन कर लेती है। पुरी में जगन्नाथ मन्दिर का निर्माण अनन्तवर्मन चोडगंग ने लगभग 1100 ई० में प्रारम्भ कराया था किन्तु काफी बाद तक वह पूरा नहीं हुआ। लिंगराज मन्दिर की रूपरेखा के अनुसार ही इसका निर्माण हुआ और इसमें स्क ही पंक्ति में चार खंड है। इसकी अधिकतम लम्बाई 310 फुट तथा चौड़ाई 80 फुट है। इसकी आरती लगभग 200 फुट ऊँची है। मुख्य मन्दिर के इर्द-गिर्द 3040 मन्दिर है और यह सम्पूर्ण समूह तीन

की कृति है। यहाँ एक आंगन में मुख्य मंदिर के अतिरिक्त देवी के लिये अलग देवस्थान, कल्याणमण्डप तथा अन्य सहायक मंदिर है। आंगन के चारों ओर २५ फुट ऊँचा दीवालों का घेरा है। एक द्वार मण्डप है जो सभाभवन की ओर जाता है। सभा भवन में केन्द्रीय कक्ष के चारों कोनों पर चार विशाल काले पत्थर के स्तम्भ असाधारण आकृति के है। मंदिर की भीतरी दीवालों की उभरी आकृतियों में रामायण के दृश्य सुशोभित हो रहे हैं।

विजयनगर के किले के भीतर स्थित कुछ धर्मनिरपेक्ष भवनों पर जिनके निचले भाग विध्वंसकों के कोप से बचे रहे हैं। इनमें एक है राजा का दरबार हॉल और दूसरा है सिंहासन मंच (इसे कभी-कभी विजयभवन के नाम से भी पुकारते हैं क्योंकि यह कृष्णदेवराय द्वारा उड़ीसा-विजय के उपलक्ष में बनाया गया था)। इन भवनों को देखने से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि अनेक विदेशी शक्तियों ने नगर की वास्तुकला की प्रशंसा में जो कुछ कहे हैं वे उचित है। साम्राज्य के शेष भागों में वेल्लोर, कुम्भकोनम, कांचीपुरम्, ताड़पत्री तथा श्रीरंगम् जैसे नगर इस काल की शैली में निर्मित अपने मंदिरों के लिये उचित ही विख्यात है। वेल्लोर स्थित मंदिर का कल्याण मंडप अपने ढंग का सबसे खुदा ढाँचा माना जाता है और इसका 'गोपुर' इस शताब्दी की शैली का खास नमूना है। विरिंचीपुरम् (उत्तरी आर्काट जिला) स्थित मार्ग-सहेश्वर का मंदिर भी अपने कल्याणमंडप की प्रचुर सजावट की दृष्टि से अनोखा है। कांचीपुरम् के एकाम्रनाथ तथा वरदान मंदिरों के मंडपों के विचित्र आकार है। ताडपत्री स्थित रामेश्वर मंदिर के दो गोपुर अपने सम्पूर्ण लम्बे भाग में- जो सामान्यतः अपेक्षाकृत सादा छोड़ दिया जाता था। अन्ततः श्रीरंगम स्थित तथाकथित घोड़ा दरबार या शेषगिरि मंडप में कुछ लड़ते हुए घोड़ों की एक पंक्ति है- जिनमें प्रत्येक अपने पैर लगभग ७ फुट ऊँचा उठाए हुए है।

विजयनगर वास्तुकला के अन्तिम चरण को मदुरा शैली कहा जाता है, क्योंकि इसको सबसे अधिक प्रोत्साहन मदुरा के नायकों से मिला। कुछ अंश तक यह पाण्ड्य राजाओं की निर्माण-प्रणाली का पुनरुत्थान तथा विस्तार था इस स्थापत्य में संकेन्द्रीय बाहरी दिवालों पर प्रत्येक स्थानों पर मुख्यतः गोपुरम्

दिवारों पर खजुराहो के मंदिरों जैसा अलंकरण प्राप्त नहीं होता। भुवनेश्वर के मंदिरों में लिंगराज मंदिर उड़ीसा शैली का सबसे अच्छा उदाहरण है इसमें चार विशाल कक्ष है मुख्य कक्ष के ऊपर अत्यन्त ऊँचा शिखर बनाया गया है। इसकी गोलाकार चोटी के ऊपर पत्थर का आमलक तथा कलश रखा गया है इस मंदिर का शिखर अपने पूर्ण रूप में सुरक्षित है। लिंगराज मंदिर के अतिरिक्त पुरी का जगन्नाथ मंदिर तथा कोणार्क स्थित सूर्य मंदिर भी उड़ीसा शैली के श्रेष्ठ उदाहरण है। कोणार्क का सूर्य मंदिर वास्तु-कला की एक अनुपम रचना है। यह रथ के आकार पर बनाया गया है। इसका विशाल प्रांगण 865' × 540' के आकार का है। मंदिर का शिखर 225' ऊँचा था जो कुछ समय पूर्व गिर गया किन्तु इसका बड़ा सभाभवन आज भी सुरक्षित है। सभाभवन तथा शिखर का निर्माण एक चौड़ी तथा ऊँची चौकी पर हुआ है जिसके चारों ओर बारह पहिये बनाये गये है। प्रवेशद्वार पर जाने के लिये सीढ़ियाँ बनाई गयी है। इसके दोनों ओर उछलती हुई अश्व प्रतिमायें उस रथ का आभास करती है जिन पर चढ़कर भगवान सूर्य आकाश में विचरण करते है। मंदिर के बाहरी भाग पर विविध प्रकार की प्रतिमायें उत्कीर्ण की गयी है। कुछ मूर्तियां अत्यन्त अश्लील है जिन पर तांत्रिक विचारधारा का प्रभाव माना जा सकता है संभोग तथा सौंदर्य का मुक्त प्रदर्शन यहाँ दिखाई देता है।

कलिंग राज्य उड़ीसा में नवीं से तेरहवीं सदी के बीच उत्तर भारत की शैली में अनेक मंदिरों का निर्माण हुआ। भुवनेश्वर में इन मंदिरों का मुख्य समूह है जहाँ 30 से अधिक मंदिर है यहाँ से पचास मील की परिधि में, पुरी के जगन्नाथ मंदिर तथा कोणार्क के सूर्य मंदिर, जैसे इस क्षेत्र के दो सबसे बड़े और सबसे प्रसिद्ध स्मारक है। मंदिरों का एक छोटा समूह गंजाम जिले के किनारे पर मुखलिंगम के दक्षिण में भी है। मुखलिंगम-समूह बहुत अच्छी तरह सबसे प्राचीन उदाहरणों में माना जा सकता है। इस समूह का सबसे विलक्षण उदाहरण है मुखलिंगमेश्वर जिसमें पाँच देवालय है। एक केन्द्रीय देवालय है जिसके चारों कोने पर चार देवस्थान है।

क्षेत्रीय कला एवं स्थापत्य

असि० प्रो० डॉ० संदीप कुमार
इतिहास विभाग
बी०एम०कॉलेज, रहिका, मधुबनी
मो०-8051796740

क्षेत्रीय कला एवं स्थापत्य : राजस्थान, उड़ीसा, विजयनगर दिनांक-

राजस्थान → राजपूत शासक अपनी शक्ति एवं सम्पन्नता के कारण उत्साही निर्माता थे अतः इस काल में अनेक भव्य मन्दिर, मूर्तियाँ एवं सुदृढ़ दुर्गों का निर्माण किया गया। राजपूत-कालीन स्थापत्य के भव्य नमूने भुवनेश्वर (उड़ीसा), माऊंट आबू (राजस्थान) से प्राप्त होते है। चौलुक्यवंशी (सोलंकी) शासकों के शासनकाल में गुजरात के अन्हिलवाड़ा तथा राजस्थान के माऊँट आबू पर्वत पर कई भव्य मन्दिरों का निर्माण करवाया गया। ये मन्दिर मुख्यतः जैन धर्म से संबंधित थे। आबू पर्वत पर दो प्रसिद्ध संगमरमर के मन्दिर है जिन्हें दिलवाड़ा कहा जाता है पहले में आदि नाथ की मूर्त्ति है जिसकी आँखें हीरे की है। प्रवेश द्वार पर छः स्तम्भ तथा दस गज-प्रतिमायें है। इसमें 128'×75' के आकार का एक विशाल प्रांगण है। यह मन्दिर अपनी बारीक नक्काशी तथा अद्भुत मूर्त्तिकारी के लिये प्रसिद्ध है। पाषाण शिल्प कला का इतना बढ़िया उदाहरण अन्यत्र नहीं मिलता। दूसरा मन्दिर जिसे तेजपाल कहा जाता है इसी के बगल में स्थित है। यह मन्दिर भी भव्य एवं सुन्दर है। पहाड़ी पर तीन अन्य जैन मन्दिर भी बने हुए है। पश्चिमी भारत के मन्दिरों का निर्माण सामान्यतः ऊँचे चबूतरे पर हुआ है। इनके शिखर छोटी मीनारों से अलंकृत है। मन्दिरों की भीतरी छतों पर खोदकर चित्रकारियाँ की गयी है। सभी मन्दिर अपनी सूक्ष्म तथा सुन्दर नक्काशी के लिये प्रसिद्ध है। इनमें सफेद संगमरमर के पत्थर लगे हुए है

उड़ीसा → उड़ीसा के मन्दिर मुख्यतः भुवनेश्वर, पुरी तथा कोणार्क में है जिनका निर्माण 8वीं से 13वीं शताब्दी के बीच हुआ। भुवनेश्वर के मन्दिरों के मुख्य भाग के सम्मुख चौकोर कक्ष बनाया गया है इनके भीतरी भाग सादे है किन्तु बाहरी भाग को अनेक प्रकार की प्रतिमाओं तथा अलंकरण से सजाया गया है। मन्दिरों में स्तम्भों का बहुत कम प्रयोग किया गया है। इनके स्थान पर लोहे की शहतीरों का प्रयोग मिलता है मन्दिरों की भीतरी